प्रकरण पंद्रह

"आपकी सहायता करना सम्भव नहीं होगा"

इस वृद्धावस्था में मैं न तो यहाँ सैर करने आया हूँ न मेरा कोई व्यक्तिगत स्वार्थ है। समस्त मानव जाति के हित के लिए मैं कृष्ण-चेतना के विज्ञान को कार्यान्वित करने के प्रयत्न में लगा हूँ। जो सचमुच उनको सुखी बनाएगी। इसलिए भगवान् कृष्ण के प्रत्येक भक्त का कर्तव्य है कि वह सभी तरह से मेरी सहायता करे।

—सुमति मोरारजी को लिखित एक पत्र से

नवम्बर बीत गया और दिसम्बर का आगमन हुआ और अपने प्रवेश-पत्र की अवधि बढ़वाकर प्रभुपाद वहाँ रुके रहे। अमेरिका इतना सम्पन्न लग रहा था, फिर भी कुछ चीजें ऐसी थीं जिनको सहन करना कठिन था। अग्निशामक के इंजिनों और पुलिस की गाड़ियों के भोंपुओं और सीटियों से प्रभुपाद को लगता था मानो उनके हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो जायेंगे। कभी-कभी रात में उन्हें सुनाई देता कि किसी मनुष्य पर आक्रमण हो रहा है और वह सहायता के लिए चिल्ला रहा है। नगर में अपने शुरु के दिनों से वे ऐसा अनुभव कर रहे थे कि कुत्ते के मैले की गंध सर्वत्र व्याप्त है। और यद्यपि यह इतना धनी नगर था, किन्तु उनके लिए एक आम खरीदना भी मुश्किल था और यदि वह मिल भी जाता, तो वह बहुत महंगा और प्रायः बिना स्वाद का होता। अपने कमरे से उन्हें कभी कभी सागर में चलने वाले जहाजों के हार्न सुनाई देते और उन्हें सपना-सा आता कि किसी दिन भी वे अपनी संकीर्तन मण्डली के साथ विश्व का भ्रमण करेंगे और सभी बड़े नगरों में प्रचार करेंगे। मौसम हिमांक से नीचे तक ठंडा हो गया था, इतना ठंडा कि भारत में उसका अनुभव उन्होंने कभी नहीं किया था। प्रतिदिन उन्हें हडसन की ओर जाना पड़ता

था, ऐसी पश्चिमी हवा का सामना करते हुए जो एक सामान्य जाड़े के दिन भी किसी की साँस फुला देने, आँखों से जल बहाने और चेहरे को सुन्न कर देने वाली थी। किसी तूफान के दिन तो इस तेज हवा और उसके अचानक झोंकों से कोई आदमी लुढ़ककर भूमि पर गिर भी सकता था। कभी कभी वर्षा का ठंडा जल सड़कों को बर्फ से चिकनी बना देता। ठंडक उस समय और भी प्रचंड हो जाती थी, विशेषतया जब कोई वेस्ट साइड ड्राइव के सुरक्षारहित प्रभंजनताड़ित क्षेत्र में पहुँचता था, जहाँ समय-समय पर उठने वाले बवंडर भूरी पत्तियों और रद्दी कागज के टुकड़ों को उड़ाकर हवा में आश्चर्यजनक ढंग ऊँचाई तक ले जाते थे।

श्रील प्रभुपाद एक कोट पहनते थे, जो डॉ. मिश्र ने उन्हें दिया था। किन्तु ठंडी, तूफानी हवा में पैदल चलने पर भी उन्होंने अपनी धोती पहनना नहीं छोड़ा। रामकृष्ण मिशन के स्वामी निखिलानंद ने प्रभुपाद को परामर्श दिया था कि यदि वे पश्चिम में रहना चाहते हों, तो उन्हें पारम्परिक भारतीय वेश-भूषा और कठोर शाकाहारीपन का परित्याग कर देना चाहिए। उन्होंने कहा था कि मांसाहार और मद्य-पान तथा पैंट और कोट धारण करना इस जलवायु में लगभग अनिवार्य-सा था। भारत छोड़ने के पहले प्रभुपाद के एक गुरु-भाई ने उन्हें दिखाया था कि पश्चिम में छुरी-काँटे से किस प्रकार खाना चाहिए। किन्तु प्रभुपाद ने पाश्चात्य तरीकों को अपनाने की बात कभी नहीं सोची। उनके सलाहकारों ने उन्हें सावधान कर दिया था कि वे विदेशी न बने रहें, वरन् अमरीकी जीवन-पद्धति को अपना लें, भले ही इसके लिए उन्हें भारत में लिए गये व्रतों को तोड़ना पड़े। लगभग सभी भारतीय आप्रवासियों को अपने पुराने तरीकों में परिवर्तन करना पड़ा है। किन्तु प्रभुपाद के विचार भिन्न थे और उन्हें विचलित नहीं किये जा सकते थे। उन्होंने सोचा कि औरों को अपने तरीके बदलने पड़े होंगे, क्योंकि वे पश्चिम से प्रौद्योगिकीय ज्ञान की भिक्षा माँगने आये थे। "मैं किसी चीज की भिक्षा माँगने नहीं आया हूँ।" उन्होंने कहा, "प्रत्युत मैं कुछ देने आया हूँ।"

अपने एकाकी विचरणों में श्रील प्रभुपाद ने कई स्थानीय लोगों से जान-पहचान कर ली। इनमें एक तुर्की के यहूदी श्रीमान् रूबेन थे, जो न्यूयार्क नगर में उपमार्ग के कंडक्टर के रूप में कार्य करते थे। प्रभुपाद से रूबेन की भेंट एक पार्क के बेंच पर हुई। मिलनसार और विश्व-यात्री होने के कारण वे भारतीय साधु के पास बैठ गये और उनसे बातें करने लगे।

श्रीमान् रूबेन : *ऐसा लगता था कि वे जानते थे कि उनके पास कई मन्दिर होंगे, जो भक्तों से भरे होंगे। वे इधर-उधर देखते और कहते, "मैं कोई निर्धन नहीं हूँ, मैं धनवान हूँ। मन्दिर और पुस्तकें तो हैं ही, केवल समय हमें उनसे दूर रखे हुए है।" वे हमेशा*

"हम" का प्रयोग करते और अपने आध्यात्मिक गुरु के विषय में बात करते, जिन्होंने उन्हें भेजा था। उस समय वे लोगों से परिचित नहीं हुए थे, किन्तु वे कहते, "मैं कभी अकेला नहीं हूँ।" वे मुझे हमेशा एकाकी लगते। इसलिए मैं उन्हें एलिजाह की तरह पवित्र व्यक्ति मानता था, जो हमेशा अकेले बाहर जाया करते थे। मेरा विश्वास है कि उनका कोई अनुयायी नहीं था।

जब वर्षा न होती या मौसम बहुत ठंडा न होता, तब प्रभुपाद बस से ग्रांड सेंट्रल स्टेशन पहुँच जाते और वहाँ बयालीसवीं स्ट्रीट में स्थित केन्द्रीय पुस्तकालय में चले जाते। वहाँ उनके *श्रीमद्भागवत* के खंड उपलब्ध थे। उनमें से कुछ वही थे, जिन्हें संयुक्त राज्य के दूतावास को दिल्ली में उन्होंने बेचा था। वे यह देखकर प्रसन्न होते कि वे खंड कार्ड सूचीपत्र में अंकित हैं और लोग नियमित रूप से उन्हें निकलवाते थे और पढ़ते थे। कभी-कभी वे संयुक्त राष्ट्र के चौक से निकलते या चौसठवीं सड़क पर न्यू इंडिया हाउस तक जाते, जहाँ उनकी भेंट वाणिज्य दूतावास के एक अधिकारी श्रीमान् मल्होत्रा से हुई थी। इसी श्रीमान् मल्होत्रा के माध्यम से उनका सम्पर्क टैगोर सोसायटी से हुआ था और गत नवम्बर में उसकी एक बैठक में व्याख्यान देने का आमंत्रण प्राप्त हुआ था।

बस द्वारा पाँचवें एवन्यू को जाते हुए वे बाहर झाँककर भवनों को देखते और कल्पना करते कि कभी ये भवन कृष्ण-चेतना के लिए उपयोग में आयेंगे। कुछ भवनों में उनकी विशेष रुचि थी : एक भवन तेईसवीं सड़क पर और दूसरा गुम्बद वाला भवन चौदहवीं सड़क पर उन्हें विशेष रूप से आकृष्ट करते। वे सोचते कि भौतिकतावादियों ने इस तरह इतने विशाल भवन निर्मित कर लिए हैं, फिर भी आध्यात्मिक जीवन के लिए उन्होंने कोई गुंजाईश नहीं रखी है। महान् तकनीकी उपलब्धियों के बावजूद लोग रिक्त और निरर्थक अनुभव कर रहे हैं। उन्होंने ये विशाल भवन बना लिए हैं, पर उनके बच्चे एल.एस.डी. की ओर जा रहे हैं।

दिसम्बर २

न्यूयार्क टाइम्स के शीर्षक : "न्यूयार्क नगर के अस्पतालों के विवरण के अनुसार उपचार के लिए दाखिल एल.एस.डी. के रोगियों की संख्या में विशेष वृद्धि।" "वियतनाम युद्ध में अमेरिका के भाग लेने के विरुद्ध प्रतिवाद में वृद्धि।"

मौसम ठंडा होने लगा, किन्तु दिसम्बर में बर्फ नहीं गिरी। कोलम्बस एवन्यू में दुकानों में क्रिसमस-वृक्ष बिकने लगे, युरोपीय जलपान-गृह छुट्टियों के विशेष प्रकाश से जगमगाने लगे। बहत्तरवीं सड़क पर रिटेलर्स एसोसिएशन की ओर से ऊँचे-ऊँचे लाल खम्भे खड़े किये गये, जिनके सिरों पर हरे रंग के सलमा-सितारों से चमकते क्रिसमस वृक्ष लहरा रहे थे। सड़क की दोनों ओर खड़े खंभों के सिरों को मंडित करने वाले इन भड़कीले

क्रिसमस वृक्षों से चमकती मालाएँ पल्लवित होकर सड़क के आर-पार फैली हुई थीं और रंगबिरंगे प्रकाश से घिरे लाल पन्नी के तारों से जुड़ी हुई थीं।

यद्यपि प्रभुपाद ने क्रिसमस की कोई खरीददारी नहीं की, फिर भी वे अपना *श्रीमद्भागवत* बेचने के प्रयास में ओरियंटलिया, सैम वीजर्स, डबलडे, पैरागान और कितने ही अन्य पुस्तक-भंडारों में गये। पैरागान बुक गैलरी के स्वामी की पत्नी नीमती फेर्बर ने प्रभुपाद को "एक प्रीतिकर और बहुत ही विनम्र लघुकाय सज्जन" माना। पहली बार जब प्रभुपाद उनके यहाँ गये, तो उन्होंने उनकी पुस्तकों में रुचि नहीं दिखाई, किन्तु प्रभुपाद ने फिर प्रयत्न किया, तो श्रीमती फेर्बर ने कई प्रतियाँ खरीद लीं। प्रभुपाद लगभग प्रति सप्ताह उनकी दुकान पर जाते थे और चूँकि उनकी पुस्तकें बराबर बिक रही थीं, इसलिए उनकी कीमत उन्हें मिल जाती थी। कभी कभी जब उन्हें बेचने के लिए स्वयं पुस्तकों की जरूरत होती तब वे श्रीमती फेर्बर के यहाँ जाते और कुछ प्रतियाँ उठा लाते और कभी कभी वे फोन करके पूछते कि पुस्तकें कैसी बिक रही हैं।

श्रीमती फेर्बर : *वे जब भी आते वे एक गिलास जल माँगते। यदि कोई ग्राहक इस तरह की माँग करता, तो मैं प्राय: कह देती थी "वाटर कूलर वहाँ है।" किन्तु चूँकि प्रभुपाद वृद्ध थे, इसलिए मैं उनसे ऐसा न कहती। वे सदैव बहुत विनम्र और शालीन थे और बहुत बड़े विद्वान थे। इसलिए वे जब भी माँगते मैं स्वयं उनके लिए एक गिलास जल लाती।*

एक बार प्रभुपाद श्रीमती फेर्बर से भारतीय पाकविद्या के सम्बन्ध में बात कर रहे थे और वे बोलीं कि उन्हें समोसे बहुत पसन्द थे। जब प्रभुपाद दूसरी बार उनके पास गये, तो वे एक प्लेट समोसे ले गये और श्रीमती फेर्बर ने उन्हें बड़े स्वाद से खाया।

• • •

हार्वे कोहन, जो स्वामीजी से आनन्द आश्रम में बहुत अधिक प्रभावित हुआ था, उनसे मिलने के लिए उनके ५०१ नम्बर के कमरे में प्राय: आता था।

हार्वे : *जिस कमरे में वे रहते थे, वह मैनहट्टन के ऊपरी भाग में योग सोसायटी के पिछले हिस्से में एक छोटा-सा कार्यालय था। मैं नियमित रूप से उनके पास जाने लगा और हम उस छोटे-से कार्यालय में फर्श पर एक दूसरे के आमने-सामने बैठ जाते। उनका टाइप-राइटर और एक नया टेप रेकर्डर दो सूटकेसों के ऊपर रखे होते थे। और वहाँ पुस्तकों से भरा हुआ एक बक्स था, जिन्हें वे भारत से लाए थे और नृत्य करती हुई आकृतियों की एक रंगीन प्रतिकृति थी, जिसे वे प्राय: देखा करते थे। मैंने स्वामी भक्तिवेदान्त को बताया कि मैं एक कलाकार हूँ और उन्होंने मुझसे अनुरोध किया कि मैं*

उन नर्तकों का चित्र बनाऊँ। उन्होंने बताया कि वह चित्र चैतन्य महाप्रभु और उनके शिष्यों का था। वह चित्र 'संकीर्तन' कहलाता था। मैं जब भी उनसे मिलने जाता, स्वामीजी प्रसन्नतापूर्वक मुझसे मिलते थे। मैंने अपने विषय में उन्हें बताया और उस जाड़े में कई रातों में उनके कमरे में हमने साथ-साथ हरे कृष्ण कीर्तन किया। मैं अपने आवास से नगर के ऊपरी भाग में उनसे मिलने के लिए ट्रेन द्वारा जाया करता था।

• • •

जनवरी ११, १९६६

प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु उनके रूस के प्रवास-काल में दिल का दौरा पड़ने से हो गई। प्रधानमंत्री प्रभुपाद से भारत में व्यक्तिगत रूप से परिचित और उनके *श्रीमद्भागवत* के अनुवाद के प्रशंसक थे। उनका अमेरिका जाने का कार्यक्रम बन चुका था और प्रभुपाद को आशा थी कि वे उनसे व्यक्तिगत रूप से धन का अनुदान प्राप्त करने की स्वीकृती ले लेंगे। उनकी असामयिक मृत्यु से १४३ वेस्ट सेवेंटी-सेकंड स्ट्रीट में मकान खरीदने की प्रभुपाद की योजना गड़बड़ में पड़ गई। दलालों ने उन्हें मकान दिखा दिया था और उन्होंने मन में योजना बना ली थी कि उसके भीतरी भाग में भगवान् अर्चाविग्रह का पूजन और प्रसाद का वितरण किस तरह होगा। धन भारत से आना था और उसके लिए अनुदान की स्वीकृति स्वयं प्रधानमंत्री शास्त्री से मिलनी थी। किन्तु अचानक सब कुछ बदल गया।

जनवरी १४

प्रभुपाद ने मकान के मालिक श्रीमान् ए.एम. हार्टमैन को लिखने का निश्चय किया। उन्होंने बताया कि उनकी योजना किस तरह गड़बड़ा गई थी और फिर उन्होंने एक नई योजना प्रस्तुत की।

> प्रधानमंत्री, श्री लाल बहादुर शास्त्री की अचानक मृत्यु हो गई है और मैं बहुत ही परेशानी में हूँ।... चूँकि अब भारत से धन प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई हो गई है, इसलिए मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि अपने मकान को कम-से-कम कुछ समय के लिए भगवत् चेतना के अन्तर्राष्ट्रीय संघ के रूप में उपयोग करने की अनुमति प्रदान करें। मकान काफी दिनों से बेकार पड़ा है और मुझे मालूम हुआ है कि आपको उसके लिए टैक्स, बीमा और अन्य खर्चे वहन करने पड़ रहे हैं, यद्यपि उससे आपको कोई आय नहीं है। यदि आप मकान को इस सार्वजनिक कार्य के निमित्त दे देते हैं, तो आप कम-से-कम ये टैक्स और अन्य खर्चे बचा लेंगे, जो इस

समय आपको व्यर्थ में देने पड़ रहे हैं।

यदि मैं यह संस्थान तत्काल आरम्भ कर सकूँ, तो निश्चय ही मैं स्थानीय लोगों की सहानुभूति प्राप्त कर सकूंगा और उस अवस्था में मुझे भारत से धन प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रह जाएगी। मेरी यह भी प्रार्थना है कि आप स्वयं भी उस सार्वजनिक संस्थान के निदेशकों में से एक निदेशक हों, क्योंकि आप उसे आरम्भ करने लिए मकान देंगे।

ए.एम. हार्टमैन को योजना में अभिरुचि नहीं थी।

• • •

जिस दिन प्रभुपाद ने हार्टमैन को पत्र लिखा, उसी दिन उन्हें एक पत्र सर पद्मपत सिंघानिया से प्राप्त हुआ, जो भारत में बृहत् जे. के. संस्थान के निदेशक थे। प्रभुपाद ने सर पद्मपतजी को आर्थिक सहायता के लिए लिखा था और उनके उत्तर से उन्हें आशा हुई। सिंघानिया परिवार न केवल अत्यन्त धनाढ्य था, वरन् उसके सदस्य भगवान् कृष्ण के भक्त भी थे।

मेरे प्रिय स्वामीजी,

मैंने आपका पत्र पढ़ा। मुझे आपका यह विचार जानकर प्रसन्नता हुई कि आप न्यूयार्क में श्री राधा-कृष्ण का एक मन्दिर निर्मित कराना चाहते हैं। मैं समझता हूँ कि आपका प्रस्ताव अच्छा है, किन्तु इसमें निम्नलिखित कठिनाइयाँ हैं :

१. मन्दिर के निर्माण के लिए हमें विदेशी मुद्रा भेजनी होगी, जिसके लिए सरकार की अनुमति आवश्यक है। बिना सरकारी अनुमति के कोई धन बाहर नहीं भेजा जा सकता। यदि भारत सरकार सहमत हो जाए, तो न्यूयार्क में मन्दिर बनाने की बात सोची जा सकती है।

२. मुझे सन्देह है कि सात लाख रुपए (१,१०,००० डालर) की इस छोटी-सी रकम से न्यूयार्क में एक मन्दिर का निर्माण हो सकता है। मैं तो चाहूँगा कि भारतीय वास्तुशिल्प के अनुकूल सुन्दर मन्दिर बने। ऐसे मन्दिर के निर्माण के लिए हमें भारत से कोई शिल्पकार भेजना होगा।

ये दोनों मुख्य कठिनाइयाँ हैं, अन्यथा आपका विचार बहुत अच्छा है।

श्रील प्रभुपाद और श्री सिंघानिया के बीच एक मूलभूत मतभेद था। न्यूयार्क में

भारतीय शैली के विशाल मन्दिर के निर्माण में लाखों डालर लगेंगे। प्रभुपाद निश्चयपूर्वक जानते थे कि यदि पद्मपत सिंघानिया चाहें, तो वे लाखों डालर दे सकते थे। किन्तु भारत के बाहर वे इतना धन कैसे भेज सकते थे? इसलिए प्रभुपाद ने पुनः सुझाव दिया कि वे केवल सात लाख रुपए खर्च करें। "मकान खरीदने के बाद," उन्होंने लिखा, "हम उसके ऊपर दूसरी मंजिल बना सकते हैं, जिस पर मन्दिर का गुंबद, चक्र आदि होगा।" तर्क करने का प्रभुपाद का अपना ढंग था :

> भगवान् द्वारकाधीश ने द्वारका में अपने ऐश्वर्य का प्रदर्शन अपनी १६,००० रानियों के साथ किया और कहते हैं कि हर रानी के लिए उन्होंने एक अलग भवन का निर्माण किया। और ये भवन रत्नों और पत्थरों से निर्मित हुए थे, जिससे उनमें कृत्रिम प्रकाश की आवश्यकता न रहे। इसलिए आपका विचार भगवान् कृष्ण का एक ऐश्वर्यशाली मन्दिर बनाने का है। किन्तु हम वृन्दावन के निवासी हैं और वृन्दावन में द्वारका की भाँति ऐश्वर्यशाली कोई भवन नहीं है। यमुना-तट स्थित वृन्दावन वनों और गायों से भरा है और भगवान् कृष्ण ने अपने बचपन में वहाँ चरवाहे के रूप में लीला की थी, बिना किसी राजसी वैभव के जिसके सब द्वारकावासी अभ्यस्त हैं। इसलिए जब द्वारकावासियों का सामना वृन्दावनवासियों से हो, तो एक बीच का मार्ग निकाला जा सकता है।

द्वारका के अनुरूप सर पद्मपत की धनाढ्यता और वृन्दावन के अनुरूप श्रील प्रभुपाद की भक्ति से द्वारका और वृन्दावन दोनों के अधिपति भगवान् कृष्ण की उपासना समुचित ढंग से हो सकती थी।

• • •

जनवरी २१

प्रभुपाद को बान महाराज का उत्तर मिला। दो सप्ताह पूर्व उन्होंने अपने गुरु-भाई को लिखा था, जो वृन्दावन में इंस्टीट्यूट आफ ओरियन्टल फिलासफी के निदेशक थे। पत्र में प्रभुपाद ने बताया था कि न्यूयार्क में उन्हें एक स्थान मिल गया था, जहाँ वे राधा और कृष्ण के विग्रह, उपासना के लिए प्रतिष्ठित करना चाहते थे। अपने उत्तर में बान महाराज ने राधा-कृष्ण के चौदह इंच के कांस्य विग्रहों का अनुमानित मूल्य लिख भेजा था, किन्तु उन्होंने यह चेतावनी भी दी थी कि विग्रह-उपासना आरम्भ करना बहुत जिम्मेदारी की बात होगी। श्रील प्रभुपाद ने उत्तर में लिखा :

> मेरा विचार है कि जब मन्दिर की प्रतिष्ठा हो जायेगी, तो कुछ लोग मिल जायेंगे। वे अमेरिका के भी हो सकते हैं, जैसे रामकृष्ण मिशन और अन्य ये योगाश्रमों में दिखाई देते हैं। इसलिए मैं यहाँ एक मन्दिर की प्रतिष्ठा करने के लिए प्रयत्न कर रहा हूँ, क्योंकि श्रील प्रभुपाद (भक्तिसिद्धान्त सरस्वती) इसे चाहते थे।

प्रभुपाद ने बान महाराज से यह भी प्रार्थना की कि वे उस धन को भेजने की अनुमति सरकार से प्राप्त करने में सहायता करें, जो पद्मपत सिंघानिया देना चाहते थे। उन्होंने उल्लेख किया कि भारत के उपराष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन से, जो बान महाराज को जानते थे, उनका व्यक्तिगत विस्तृत पत्र-व्यवहार हो चुका था।

> उन्हें बताइए कि यह पूजा का सामान्य मन्दिर नहीं है, वरन् *श्रीमद्भागवत* पर आधारित भगवत् चेतना का अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान होगा।

• • •

जनवरी २२

जिस समय श्रील प्रभुपाद न्यूयार्क में राधा-कृष्ण के विग्रहों के स्वागत के लिए प्रार्थना कर रहे थे, उसी समय नगर पर एक बर्फीले तूफान का प्रहार हुआ। प्रभुपाद ने बर्फ कदाचित् पहले कभी नहीं देखी थी। उस प्रात: वेला में वे उठे, तो उन्हें लगा कि बगल के मकान को जैसे किसी ने चूने से पोत दिया हो। जब तक वे बाहर नहीं निकले तब तक उन्हें पता नहीं लग पाया कि यह बर्फ थी। तापमान दस डिग्री हो गया था।

नगर में आपात स्थिति आ गई थी, किन्तु प्रभुपाद अपने नित्य के भ्रमण पर लगे रहे। उन्हें भारी बर्फ के बीच से चलना पड़ा। वे ओवरकोट के नीचे केवल धोती पहने थे और उनका सिर "स्वामी हैट" से ढका था। मुख्य सड़कें साफ कर दी गई थीं किन्तु बहुत-से फुटपाथ बर्फ से ढके थे। ब्राडवे को विभाजित करने वाले पार्क की पट्टी पर तूफानी हवा ने कंधों तक की ऊँचाई तक बर्फ जमा कर दी थी और बेंचें दब गई थीं। ब्राडवे की छतरियाँ जो पोस्टरों और विज्ञापनों की कई परतों से आच्छादित थीं, अब बर्फ और हिम की एक अतिरिक्त परत से और आच्छादित हो गई थीं। किन्तु मौसम की परवाह न करते हुए न्यूयार्क के निवासी अपने कुत्तों और अन्य पालतू जानवरों को टहलाने के लिए तब भी निकले थे। वे जानवर ओवरकोट और बरसातिया पहने हुए थे। अमेरिका के लोगों का अपने पालतू कुत्तों के प्रति इस लाड-प्यार ने प्रभुपाद को आश्चर्यमिश्रित विनोद की भावना से भर दिया। जब वे वेस्ट एंड एवन्यू पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि द्वारपाल नित्य की भाँति

टैक्सियाँ बुलाने के लिए सीटियाँ बजा रहे थे और साथ ही मकानों के सामने के फुटपाथों को चलने योग्य बनाने हेतु बर्फ पिघलाने के लिए उस पर नमक छिड़क रहे थे। रिवरसाइड पार्क में बेंचें, फुटपाथ और वृक्ष बर्फ से आच्छादित थे और आकाश से पड़ते हुए प्रकाश में झिलमिला रहे थे।

समाचारों के अनुसार कोरिया युद्ध शुरू होने के बाद सेवा-चयन-अधिकारियों ने पहली बार अनिवार्य सेवा के लिए सैनिकों की संख्या में बड़ी वृद्धि की घोषणा की। संयुक्त राज्य की वायु-सेना द्वारा उत्तर वियतनाम पर बमबारी का एक मास के युद्ध विराम का अन्त हुआ। न्यूयार्क में तीन सप्ताह से चलने वाली यातायात हड़ताल समाप्त हो गई और यातायात के श्रमिक-नेता का हृदय-रोग से जेल में देहान्त हो गया।

• • •

जनवरी ३०

ईस्ट कोस्ट में भयंकर बर्फानी तूफान आया। नगर में सात इंच ऊंची बर्फ गिरी और पचास मील प्रति घंटे की गति तक हवा के झोंके आते रहे। न्यूयार्क नगर की ओर से उन लोगों को गर्म स्थानों में रखने और भोजन देने की व्यवस्था की गई, जो ऊष्मा-रहित कोठरियों में रहते थे। जे. एफ. के. हवाई अड्डा बन्द कर दिया गया और नगर में आने वाले सारे रेल-मार्ग और सड़क-मार्ग भी बन्द हो गये। हिमपात के कारण आठ दिन के अन्दर दूसरी बार ऐसी आपात स्थिति घोषित की गई थी।

अकेले व्यक्ति के रूप में श्रील प्रभुपाद हिमपात के कारण उत्पन्न आपात स्थिति या अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध के विषय में कुछ नहीं कर सकते थे—वे इन्हें केवल कलियुग के लक्षणों के रूप में देख रहे थे। भौतिक संसार में दुख सदैव रहेगा। किन्तु यदि वे न्यूयार्क के किसी भवन में राधा और कृष्ण को प्रतिष्ठित कर सकें... श्री भगवान् के लिए कुछ भी असम्भव नहीं। कलियुग में भी स्वर्ण युग प्रकट हो सकता है और लोगों को राहत मिल सकती है। यदि अमेरिका के लोग कृष्णभावनामृत अपना ले, तो सारा संसार उनका अनुसरण करेगा। शास्त्रों की दृष्टि से देखते हुए श्रील प्रभुपाद बर्फीले तूफान से होकर आगे बढ़ते रहे और कृष्णभावनामृत के उद्देश्य की सिद्धि के लिए सहायता का जो क्षीण-रेखा के समान थी, अनुसरण करते रहे।

• • •

फरवरी ४

उन्होंने तीर्थ महाराज को फिर लिखा, जो इस बात के लिए सहमत हो गये थे कि वे

श्रीमद्भागवत के प्रारम्भिक श्लोकों के निकट पहुँचने पर भक्तिवेदान्त स्वामी भागवत के उद्देश्यों में खो गये। उन श्लोकों में बलपूर्वक कहा गया था कि केवल भागवत ही कलियुग के दुष्प्रभावों से समाज की रक्षा कर सकता है। इस युग के लिए श्रीमद्भागवत की संस्तुति यही है कि केवल सच्चे भक्तों के मुख से परम भगवान् कृष्ण का गुण-गान सुना जाये।

भागवत का प्रारम्भ आज से लगभग पाँच हजार वर्ष पूर्व, वर्तमान कलियुग के प्रारम्भ में नैमिषारण्य में संतों के समागम से हुआ। मानवता के पतन का पूर्वाभास होने पर संतों ने सभा के वरिष्ठ सदस्य, सूत गोस्वामी से पूछा, "अब, जबकि भगवान् कृष्ण, जो सभी धार्मिक सिद्धान्तों के शरण-स्थल है, अपने आध्यात्मिक लोक को चले गये हैं, धार्मिक सिद्धान्त कहाँ से प्राप्त होंगे?" सूतजी का उत्तर था कि *श्रीमद्भागवत* पुराण "जो सूर्य के समान देदीप्यमान है," भगवान् का साहित्यिक अवतार है और वही कलियुग के घने अंधकार में खोए मनुष्यों को दिशा-बोध कराएगा।

श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में श्रील व्यासदेव अपने आध्यात्मिक गुरु नारद मुनि के आदेशानुसार ध्यान-मग्न होकर बैठ गये। समाधि की दशा में उन्होंने परम भगवान्, उनकी शक्तियों और कलियुग के दुख भोगते आत्माओं को देखा। उन्होंने यह भी देखा कि उनके दुख की औषधि विशुद्ध भक्ति है। ऐसी अन्तर्दृष्टि प्राप्त करके और अपने आध्यात्मिक गुरु के आदेशों को प्रेरणा मानकर, व्यासदेव ने, कलियुग के दुख भोगते आत्माओं को सर्वश्रेष्ठ लाभ पहुँचाने के लिए *श्रीमद्भागवत* की रचना आरम्भ की।

भगवान् के साहित्यिक अवतार *श्रीमद्भागवत* को पाश्चात्य संसार के लिए प्रस्तुत करते हुए भक्तिवेदान्त स्वामी को ऐसा अनुभव हुआ कि वे श्रील व्यासदेव के चरण-चिह्नों पर चलकर एक बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे थे। जिस प्रकार श्रील व्यास देव को कृष्ण की अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई थी और अपने साहित्यिक अभियान के पूर्व उन्हें अपने आध्यात्मिक गुरु से आदेश मिला था, उसी प्रकार भक्तिवेदान्त स्वामी को भी अन्तर्दृष्टि प्राप्त हुई और अपने आध्यात्मिक गुरु से आदेश मिला। भक्तिवेदान्त स्वामी को दिखाई दिया कि मानो वे श्रील वेदव्यास का ग्रंथ बहुत बड़ी संख्या में वितरित कर रहे हैं। वे न केवल पुस्तक का अनुवाद करेंगे, वे स्वयं उसे पश्चिम में ले जायेंगे, बाँटेंगे और वहाँ के लोगों को सिखाएँगे—पुस्तक के माध्यम से और व्यक्तिगत रूप में भी—कि भगवान् का सच्चा प्रेम कैसे विकसित किया जा सकता है।

श्रील प्रभुपाद : *साम्यवादी दल केवल अपना साहित्य वितरित करके जन-प्रिय हो गया है। कलकत्ता में साम्यवादी एजेंट मित्रों को आमंत्रित करते हैं और अपना साहित्य पढ़कर उन्हें सुनाते हैं। रूसी भारत में कभी नहीं आये, लेकिन हर भाषा में अपना साहित्य*

प्राप्त करने का प्रयत्न करें। उन्होंने अपनी वही महत्त्वाकांक्षाएँ बनाए रखीं, यद्यपि उनके एकमात्र सम्भाव्य दानकर्ता ने उनकी इस योजना को नामंजूर कर दिया था कि वे एक पारम्परिक दो-मंजिला भवन खरीदें और उसके ऊपर चक्र और गुंबद का निर्माण करें।

• • •

फरवरी १५

५०१ नम्बर के कमरे से दो मंजिल नीचे उतरकर प्रभुपाद ऐसे कमरे में चले गये जो केवल उनके लिए था।

> मैं उपर्युक्त भवन में ही कमरा न. ३०७ में चला आया हूँ, जो अच्छी हवा और अधिक प्रकाश वाला है। यह दो सड़कों, कोलम्बस एवन्यू और सेवेंटी-टू स्ट्रीट के संगम पर है।

डॉ. मिश्र के अनुसार प्रभुपाद नये कमरे में इसलिए चले गये, जिससे मिश्र योग सोसायटी से स्वतंत्र, वे अपने अलग स्थान में रह सकें।

• • •

फरवरी १६

प्रभुपाद ने बम्बई के यूनिवर्सल बुक हाउस के मालिकों को बम्बई क्षेत्र में अपना *श्रीमद्भागवत* बेचने के लिए कुछ संकेत देते हुए, पत्र लिखा। उन्होंने स्पष्ट किया कि वे एक राधा-कृष्ण मन्दिर स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे और "भारत के एक महान् उद्योगपति ने उसका व्यय वहन करने का वादा किया है।" चूँकि ऐसा लगने लगा था कि वे संयुक्त राज्य में "बहुत दिनों तक और रहेंगे" इसलिए वे चाहते थे कि यूनिवर्सल बुक हाउस भारत-भर में उनकी पुस्तकें बेचने की अतिरिक्त जिम्मेदारी स्वीकार करे। वे महाराष्ट्र में उनकी पुस्तकें बेचने के एजेन्ट थे। किन्तु अब प्रभुपाद ने इच्छा प्रकट की कि वे सभी प्रान्तों में उनकी पुस्तकें बेचने की जिम्मेदारी लें और सम्पूर्ण भारत के महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में उनकी पुस्तकों को स्थान दिलाएं। उन्होंने यह भी अनुरोध किया कि तब तक बिकी हुई पुस्तकों की धनराशि उनके बैंक के खाते में जमा कर दी जाये।

फरवरी २६

यूनिवर्सल बुक हाउसके श्रीमान् ए.पी. धारवाडकर ने जवाब दिया :

श्रीमद्भागवत की बिक्री की प्रगति के सम्बन्ध में मैं आपको कोई बहुत सुखद समाचार नहीं दे सकता, क्योंकि उसका विषय धार्मिक है और समाज के बहुत थोड़े लोग ऐसी पुस्तकों में व्यक्तिगत रुचि लेते हैं।... हमने नागपुर, अहमदाबाद, पूना आदि नगरों तक कुछ पुस्तक-विक्रेताओं के माध्यम से उनकी बिक्री बढ़ाने का प्रयत्न किया, किन्तु आपको सूचित करते हुए खेद है कि अनुकूल प्रतिक्रिया के अभाव में कुछ समय पश्चात् ये पुस्तक-विक्रेता पुस्तकें लौटा देते हैं। ऐसी स्थिति में हम न केवल इस बात के लिए अनुत्साहित हैं कि सारे भारत में आप की पुस्तकें बेचने का प्रस्ताव स्वीकार करें, वरन् हम अभी आपको यह लिखने का भी विचार कर रहे थे कि महाराष्ट्र में भी अपनी पुस्तकें बेचने के लिए हमारे स्थान पर आप किसी अन्य को नामांकित करें।

यूनिवर्सल बुक हाउस ने अभी तक उनकी पुस्तकों के केवल छह सेट बेचे थे, जिनकी कीमत एक सौ बहत्तर रुपए, वे उनके खाते में जमा करने वाले थे। लेखक के लिए यह कोई उत्साहजनक बात नहीं थी। फिर, उनकी पुस्तकों में भारत में किसी को रुचि नहीं थी। "धर्म के देश" में भी धार्मिक पुस्तकें केवल "समाज के कुछ लोगों" के लिए थीं।

• • •

मार्च ४

एक और प्रतिकूल बात हुई। ८ फरवरी को प्रभुपाद ने भारत की नई प्रधानमंत्री, इंदिरा गांधी को लिखा था और भारत से धनराशि भेजने के लिए अनुमति दिलवाने की प्रार्थना की थी। २५ फरवरी का लिखा नई दिल्ली से प्रधानमंत्री के सचिव श्रीमान् एल.के. घा की ओर से उत्तर मिला।

प्रिय स्वामीजी,

प्रधानमंत्री ने आपका ८ फरवरी १९६६ का पत्र देखा है। वे आपके उस मनोभाव की सराहना करती हैं, जिसने आपको *श्रीमद् भगवद्गीता* और *श्रीमद्भागवत* के आध्यात्मिक सन्देश को अन्य देशों में ले जाने को प्रोत्साहित किया है। इस समय विदेशी मुद्रा की जिस विषम स्थिति का देश को सामना करना पड़ रहा है, उसे देखते हुए हमें अत्यन्त खेद है कि राधा-कृष्ण मन्दिर की स्थापना के आपके आयोजन में यहाँ से सहायता करना सम्भव नहीं होगा।

किन्तु प्रभुपाद को अन्य आशाएँ थीं। प्रधानमंत्री को लिखने के बाद उन्होंने तीर्थ महाराज को फिर लिखा था कि वे डॉ. राधाकृष्णन से प्रार्थना करें कि धनराशि के स्थानान्तरण की अनुमति देने के लिए वे सरकार को राजी करें। उन्होंने एक महीना प्रतीक्षा की। कोई उत्तर नहीं आया।

स्पष्ट था कि प्रभुपाद के गुरु-भाई अमेरिका में प्रचार-कार्य के प्रति अपने दायित्व को तनिक भी अनुभव नहीं कर रहे थे। उन्होंने लिखा था कि उन्हें गुरु-भाइयों से अमेरिका रहते जाने के लिए प्रोत्साहन की आवश्यकता थी, क्योंकि अमेरिका इतना महंगा था। उन्होंने साफ लिखा था कि उन्हें प्रति मास एक हजार रुपए के बराबर धन व्यय करना पड़ता था। "ऐसी स्थिति में मैं प्रतिदिन आपके अनुकूल उत्तरों की प्रतीक्षा में एक एक दिन गिन रहा हूँ।" किन्तु किसी से कोई उत्तर नहीं मिला।

• • •

मार्च १८

प्रभुपाद ने सर पद्मपत सिंघानिया को यह प्रार्थना करते हुए पुनः लिखा कि वे अपने सुझाव के अनुसार न्यूयार्क में मन्दिर-निर्माण-कार्य की देखभाल करने के लिए भारत से कोई आदमी भेजें।

उनकी इस प्रार्थना का कोई उत्तर आने की जानकारी नहीं है।

प्रभुपाद ने सुमति मोरारजी को फिर यह प्रार्थना भेजी कि हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन की संगति करने के लिए वे कृपापूर्वक एक मृदंग भेजें। उन्होंने यह भी प्रार्थना की कि भविष्य में जब वे भारत से बहुत-से और लोगों को अमेरिका बुला भेजें, तो सुमति मोरारजी, सिंधिया जहाज पर उन्हें निःशुल्क यात्रा की सुविधा देने की कृपा करें। इसका भी कोई उत्तर नहीं मिला।

ज्यों-ज्यों उनकी आर्थिक स्थिति अधिक विषम होती गई और आशाएँ क्षीण होती गईं, भारत से सहायता चुपके से बन्द हो गई। उनके पत्रों का उत्तर न मिलना स्वयं में एक संकेत था—उच्च स्वर में और स्पष्ट रूप से—"हम आपकी सहायता नहीं कर सकते।"

यद्यपि कोई उन्हें प्रोत्साहित नहीं कर रहा था, फिर भी अपने आध्यात्मिक गुरु के आदेश और कृष्ण की इच्छा में श्रील प्रभुपाद का विश्वास बना रहा। सरकार की अनुमति के सम्बन्ध में प्रधानमंत्री का उत्तर स्पष्ट रूप से नकारात्मक था। किन्तु उनके वीजा की अवधि बढ़ गई थी। अब उनकी अन्तिम आशा सर पद्मपत सिंघानिया पर टिकी थी। प्रभुपाद जानते थे कि भारत में वे इतने प्रभावशाली व्यक्ति थे कि वे चाहें तो धन भेज देंगे। प्रभुपाद की अन्तिम आशा उन्हीं पर निर्भर थी।

• • •

अप्रैल २

श्रीमान् सिंघानिया ने स्वयं उत्तर नहीं लिखा। उनके सचिव श्रीमान् ईश्वर अय्यर ने प्रभुपाद को लिखा और न्यूयार्क में इमारत खरीदने की उनकी अन्तिम आशा को एकदम ध्वस्त करके उन्हें निरुत्साहित कर दिया।

> मुझे यह लिखते हुए खेद है कि सर पद्मपतजी को न्यूयार्क में राधा-कृष्ण का मन्दिर निर्माण करने की योजना में इस समय कोई रुचि नहीं है। आपके पत्र के अन्तिम अनुच्छेद में पूछे गये प्रश्न के उत्तर में निवेदन है कि सर पद्मपत को आपकी पुस्तक *श्रीमद्भागवत* की प्रतियाँ आपके दिल्ली कार्यालय से प्राप्त हो गई है।

• • •

दूर से देखने पर हम श्रील प्रभुपाद की केवल बाह्य आकृति देखते हैं—मैनहट्टन की सड़कों और एवन्युओं में चक्कर लगाती बहुत-सी अन्य आकृतियों के बीच एक लघु आकृति, एक विदेशी जिसका वीजा अपनी अवधि लगभग पूरी कर चुका हैं। वे दिन उनके लिए सचमुच संघर्ष और बहुत कठिनाई के दिन थे। किन्तु उनकी दिव्य चेतना सदैव सर्वोपरि थी। वे मनहट्टन की चेतना से अभिभूत नहीं थे, वरन् कृष्ण की निर्भरता में निमग्न थे, ठीक वैसे ही जैसे जब *जलदूत* जहाज पर उन्हें दिल का दौरा पड़ा था, तो *चैतन्य-चरितामृत* के अध्ययन ने उन्हें "जीवन का अमृत" प्रदान किया था।

उन्हें पहले ही सफलता प्राप्त हो चुकी थी। वे न्यूयार्क में राधा-कृष्ण के लिए मन्दिर की व्यवस्था निश्चित रूप से कर देना चाहते थे। किन्तु यह उनकी सफलता ही थी कि १९६५-६६ की शीत ऋतु में न्यूयार्क नगर में भी वे कृष्ण का स्मरण कर रहे थे, संसार उन्हें मान्यता दे, चाहे न दे। ऐसा कोई दिन न बीतता जब वे कृष्ण-ग्रंथ, *श्रीमद्भागवत* पर कार्य न करते हों। और ऐसा कोई दिन न बीतने पाता, जब वे कृष्ण को भोग न लगाते हों और *भगवद्गीता* में कथित कृष्ण-दर्शन पर प्रवचन न करते हों।

भगवान् कृष्ण *भगवद्गीता* में कहते हैं, "जो मनुष्य सर्वत्र मुझे देखता है और सभी वस्तुओं को मुझमें देखता है, उसके लिए मैं कभी तिरोहित नहीं होता हूँ और न ही वह मेरे लिए होता है।" और कृष्ण अपने शुद्ध भक्तों को विश्वास दिलाते हुए कहते हैं, "मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।" प्रभुपाद को इस विषय में कभी कोई सन्देह नहीं रहा। प्रश्न केवल यह था कि अमेरिका के लोग अपने बीच ऐसे शुद्ध भक्त को पहचान सकेंगे या नहीं। इस सम्बन्ध में तो ऐसा ही लग रहा था कि कोई भी उन्हें गम्भीरतापूर्वक नहीं लेगा। ●